



## आधुनिक संदर्भ में कबीर की प्रासंगिकता : एक अध्ययन

रेणु

अर्बन इस्टेट जीन्द, हरियाणा, भारत।

### सारांश

कबीर हिन्दी के महान कवियों में से एक है। उतर भारत की हिन्दी भाषी जनता में तुलसी के उपरान्त यदि किसी अन्य कवि का काव्य लोगों की जुबान पर चढ़ा हुआ है, तो वह कबीर ही हैं। कबीर की सखियां, उनके पद लोगों को कंठस्थ हैं, जिन्हें वे उनके अवसरों पर उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। कबीर को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई उसका मूल कारण यह है कि उनके काव्य में अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति का खरापन है। उन्हें जो अच्छा लगा उसका खुलकर समर्थन किया और जो उन्हें बुरा लगा इसका विरोध उन्होंने निर्भिकता से किया। उनका यह खरा स्वभाव लोगों को पंसद आया और इसलिए वे जनता के कंठहार बन गए। अभी कुछ समय से कवियों एवं साहित्यकारों की प्रासंगिकता का प्रश्न उठाया जाने लगा है। महान कवियों एवं साहित्यकारों के सम्बन्ध में इस प्रश्न को उठाने की आवश्यकता नहीं है। काव्य रूप, शैली, भाषा-रूप बदल जाते हैं परन्तु महान कवियों के काव्य का कथ्य-वर्ण्य जिन तथ्यों, समस्याओं एवं सत्य का दर्शन कराता है, उनकी प्रासंगिकता कभी समाप्त नहीं होती क्योंकि वे सत्य मानव जीवन के मूलभूत सत्य होते हैं। क्या वाल्मीकि कभी अप्रासंगिक हो सकते हैं ? उन्होंने मानव के जिन आदर्शों का स्वप्न देखा है, उन्हें प्राप्त करने में अभी मनुष्य जाति को न जाने कितने युग लग जाएंगे।

**मुख्य शब्द :** निरभिमानता, सृजनशीलता, परिगणना, क्षणभंगुर, संवैधानिक, प्रतिष्ठित, विच्छिन, वैमनस्य।

### प्रस्तावना

भले ही कबीर का जन्म आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व हुआ हो किन्तु उनकी शिक्षाएँ आज भी प्रासंगिक हैं। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि आज उनकी शिक्षाओं की आवश्यकता तत्कालीन युग की अपेक्षा अधिक हैं। उस समय हिन्दु-मुस्लिम जनता आपस में मन्दिर-मस्जिद के प्रश्न पर संघर्षरत रहती थी। धर्म के ठेकेदार धार्मिक उन्माद के चूल्हे पर स्वार्थ की रोटियां सेंकते थे, वैसा ही वर्तमान समय में हो रहा है। वोटों की कलुषित राजनीति ने इसे और भी गंदा कर दिया है। मन्दिर मस्जिद के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे तब भी होते थे और अब भी हो रहे हैं। निश्चय ही कबीर के शिक्षाएँ आज के इस माहौल में अधिक प्रासंगिक हैं। लगता तो यह है कि विगत 600 वर्षों में मानव सभ्यता ने रंचमात्र भी प्रगति नहीं की है। वैज्ञानिक उपकरणों एवं सुख-सुविधा के साधनों को जुटाकर भले ही हम प्रगति का दावा करें किन्तु मानवता के मोर्चे पर हम रंचमात्र भी प्रगति नहीं कर सके हैं। आज भी समाज में धार्मिक विद्वेष व्याप्त है जाति प्रथा ने अपनी जड़ों को मजबूत किया है, समाज में विषमता बढी है, समरसता कहीं दिखाई नहीं देती। ऊँच-नीच की भावना वर्तमान समय में खान-पान के स्तर पर चाहे समाप्त हो रही है किन्तु विवाह सम्बन्धों में अभी तक जाति-वर्ण ही प्रमुख है।

समाज में पाखण्ड अब भी व्याप्त हैं, दुराचरण की मात्रा घटने के स्थान पर बढी ही है। छल-कपट, हिंसा, अज्ञान और विद्वेष ने समाज को खोखला कर दिया है, अतः कबीर की प्रासंगिकता वर्तमान संदर्भों में और भी बढ गई है। कबीर ने पांखड, बाह्यचार, अंधविश्वास एवं रूढियों पर कुठाराघात किया। ऊँच-नीच के भेद की दीवारें खडी करके अपना स्वार्थ-साधन करने में लगे थे। छल-कपट, असत्य, हिंसा, अज्ञान, भ्रम का डटकर विरोध किया तथा निश्छलता, सत्य, अहिंसा, ज्ञान एवं विवके का मार्ग दिखाया। क्या मानव-समाज में पांखड, असत्य, अज्ञान और भ्रम में पडी

मानव जाति आज भी नहीं भटक रही है ? फिर कबीर अप्रासंगिक क्यों ? केवल इसलिए कि वे भक्ति-युग में उत्पन्न हुए थे, परन्तु जब तक समाज में वे दोष और अभाव रहेगें जिनके विरुद्ध कबीर ने संघर्ष किया तब तक कबीर की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता।

कबीर ने सर्व-धर्म समभाव का सन्देश दिया। हिन्दुओं और मुसलमानों के उन दोषों को पूरी निर्भिकता से उजागर किया, जिनके आधार पर वे एक दूसरे के शत्रु बने हुए थे। क्या आज हिन्दु-मुस्लिम समस्या सुलझ गई है ? यदि नहीं तो कबीर आज भी प्रासंगिक हैं।

कबीर ने भक्ति का जो पथ दिखलाया उसको ध्यान में रखने पर भी कबीर की प्रासंगिकता में कोई कमी नहीं आती। कबीर ने किसी विशेष सम्प्रदाय या पूजा-पद्धति का प्रचार नहीं किया। इसलिए उन्होंने परमेश्वर के लिए राम, कृष्ण, केशव, करीम, अल्लाह, खुदा, गोविन्द, माधव आदि सभी प्रचलित नामों को ग्रहण किया और शुद्धाचरण तथा निरभिमानता पर आधारित भक्ति का सन्देश दिया। कबीर हिन्दी के भक्ति-युग में इस दृष्टि से सर्वाधिक ग्राह्य व्यक्तित्व है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि साहित्य अपनी रसात्मकता एवं रमणीयता के कारण कभी अप्रासंगिक नहीं होता।

संभवतः साहित्य में और अखबार में मोटा अन्तर यही है कि समय बीतने के बाद अखबार की खबरें व्यर्थ हो जाती हैं, पढ़ने के बाद वे अप्रासंगिक, अरुचिकर हो जाती हैं। पढ़े हुए अखबार को न तो कोई दुबारा पढ़ता है और न उसकी कोई प्रासंगिकता ही रहती है जबकि साहित्यिक रचनाएँ कभी अप्रासंगिक नहीं होती। हम उन्हें जितनी बार पढ़ते हैं, उनमें से उतना ही नवीन अर्थ व बोध होता है तथा वे उतनी ही रुचिकर लगती हैं, इसलिए साहित्य सदैव प्रासंगिक रहता है। वह सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वजनिक है इसलिए किसी एक देश के लिए या साहित्यकार केवल उस देश के लोगों को ही प्रिय नहीं होते अपितु वे प्रत्येक सहृदय को प्रभावित

करते हैं। क्या कोई कह सकता है कि कालिदास केवल भारत के कवि हैं। या शेक्सपीयर को केवल यूरोप के लोग पसन्द करते हैं। साहित्यकार देशकाल की सीमा में बंधा नहीं होता इसलिए वह प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रचना के माध्यम से आनन्दित करता है। कबीर एक ऐसे ही सार्वकालिक कवि हैं जिनकी रचनाएं न कभी अप्रासंगिक थीं, न हैं और न होंगी।

कबीर के विषय में अपना मत प्रस्तुत करने वाले न तो गतानुगतकों की कमी है न क्रांतिकारियों की। ऐसी परिस्थिति में यदि हम यही कहें कि 'कबीर जैसा है तैसा रहै, तू बानी के गुन गाय'— यह पंक्ति कबीर की उसी उक्ति की नकल पर रची गयी है, जिसमें कबीर ने कहा है कि 'हरि जैसा तैसा रहै, तू हरषि—हरषि गुन गाय'। कबीर के जन्मस्थान का श्रेय चाहे जिस गाँव, नगर, प्रदेश, देश को दिया जाए, उनकी जाति—पाति का जो चाहे निर्धारण किया जाए लेकिन कबीर की सृजनशीलता के विविध पक्षों का जो रूप एवं जो महत्व हमारे सामने है उसको न तो न्यून किया जा सकता है और न ही उसे नकारा जा सकता है। जो साधक जीवन—पर्यन्त जाति—पाति, देश—काल की सीमाओं के विरुद्ध संघर्षरत रहा है, उसकी उन्हीं सीमाओं की तलाश, अपने आप में कितनी सार्थक होगी फिर भी एक महान रचनाकार के जीवन सूत्रों और सृजनात्मक परिवेश के अन्वेषण को नितान्त महत्वहीन भी नहीं कहा जा सकता।

कबीर के जन्म के संबंध में ऐसी लोकमान्यता है कि कबीर का जन्म रामानन्द के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, किन्तु उक्त ब्राह्मणी ने लोक—लज्जा वश काशी के पास लहरातारानामक स्थान पर नवजात शिशु को फेंक दिया और संयोगवश उसी मार्ग से नीरू—नीमा या अली नाम के जुलाहे गुजर रहे थे कि नवजात शिशु पर दृष्टि पड़ गयी और उसे घर ले आये उसका पालन—पोषण किया और शिशु का नाम कबीर रखा। असाधारण परिस्थितियों में जन्में कबीर के जन्म के विषय में जो लोक—कथा प्रचलित है वह कबीर का संबंध किसी न किसी रूप में ब्राह्मण वंश से जोड़ती हैं। आशीर्वाद की बात तो बहुत वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होती किन्तु विधवा ब्राह्मणी के रूप—सौन्दर्य पर कोई महात्मा रीझ गया होगा और उसी के दैहिक संपर्क के फलस्वरूप बालक का जन्म हुआ होगा। रामानन्द के आशीर्वाद की बात बाद में कल्पित कर ली गई।

कबीर ने अपने माता—पिता का नाम उल्लेख नहीं किया है, किन्तु ऐसा माना जाता है कि कबीर के पिता एक बड़े गोसाईं थे—'पिता हमारो बड़ गोसाईं' तिसु पिता पहिहडं किंए करि जाई। लेकिन उक्त पद का अर्थ है कि मेरा पिता सबसे बड़ा स्वामी (बड़ा गोसाईं) अर्थात् जगतपिता हैं। ऐसे पिता के नजदीक मैं कैसे जाने की हिम्मत कर सकता हूँ। स्पष्ट है कि उक्त बात कबीर ने अपने निर्गुण ब्रह्मा के बारे में ही कहा है। अतः कबीर के पिता गोसाईं नहीं हो सकते।

नाभादास ने अपने भक्तमाल में दो छप्पयों में कबीर के विषय में कुछ सूचनाएँ दी हैं। प्रथम छप्पय में कबीरदास की वाणी की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला है जैसे उनके द्वारा स्थापित भक्ति की विशिष्टता, योग, यज्ञ, व्रत और दान की तुच्छता। हिन्दू और तुर्क दोनों के प्रमाण हेतु रमैनी, सबद और साखी की रचना। वर्णाश्रम धर्म अपेक्षा आदि। साथ ही रामानन्द के शिष्यों में कबीर की भी परिगणना की गई है। दूसरे छप्पय की पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगततरन किया।।  
अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसरा पद्मावति नरहरि।  
पीपा वामानन्द रैदास धना सेन सुरसरि की धरहरि।।

औरो शिष्य प्रशिष्य एकते एक उजागर

विश्व मंगल आधार सर्वानन्द दशदा के आगर।।

बहुल काल बपु धारि कै प्रनत जनत को पर दियौ।

श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगततरन कियौ।।

(भक्तमाल छप्पय 31 पृ 288)

पूर्वोक्त बाह्य साक्ष्यों को यदि प्रामाणिक न माना जाए तो भी इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कबीरदास रामानन्द के ब्राह्मण धर्म के नहीं बल्कि उनके द्वारा परिवर्तित भक्ति—साधना के सशक्त उतराधिकारी थे। कहा जाता है कि 'भक्ति द्रविड़ी उपजी लाये रामानन्द, प्रकट किया कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड'।

कबीर का व्यक्तित्व अत्यन्त क्रांतिकारी था, उसमें परस्परविरोधी तत्त्वों का अद्भूत सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है तो चट्टान की भांति सुदृढ़ और अडिग दिखाई पड़ते हैं पर दूसरी ओर रमैया की सेज की ओर अग्रसर होते समय उनके पद किसी नवीना किशोरी के चरणों से अधिक कोमल और लचकदार प्रतीत होते हैं, वहाँ पहुँच कर वे सौ—सौ बल खाने लगते हैं। बड़े—बड़े दार्शनिकों एवं धुरन्धर विद्वानों के कथन को मात्र कागज—लेखी कहकर टुकरा देने वाला कबीर जब अपने आराध्य के सम्मुख पहुँचता है तो दीनता और हीनता से इस प्रकार गद्गद हो जाता है कि उसे छूने का साहस नहीं कर पाता उसे कहना पड़ता है — "धन मैली पिव ऊजला, लाग सकूँ न पाँव।" तार्किकता के क्षेत्र में अत्यन्त शुष्क, तीक्ष्ण, एवं हृदयहीन प्रतीत होने वाले कबीर भक्ति की भाव—धारा में बहते समय सबसे आगे दिखाई पड़ते हैं और अपनी निरक्षता की खुले आम घोषणा करते हुए भी जब आवेश में आते हैं तो रूपकों, अलंकारों, एवं प्रतीकों की ऐसी झड़ी लगा देते हैं माने वे सारे काव्यशास्त्रों से पारंगत हो।

ऐसे अद्भूत व्यक्तित्व का अविर्भाव कोई साधारण बात नहीं है, अवश्य ही वे युगावतार की विशेष क्षमता लेकर अवतरित हुए थे। आचार्य हजारी प्रसार द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है —

"वे भगवान के नृसिंहावतार की मानो प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति नाना असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन—बिन्दु पर अवतीर्ण थे। ..... वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गए मार्गों के दोष—गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।"

वस्तुतः ऐसा व्यक्तित्व अपने आप में खोज एवं मनन की वस्तु है। कवि की विचारधारा को मुख्यतः दो पक्षों में विभाजित किया जा सकता है। 1. सैद्धांतिक 2. व्यवहारिक सैद्धांतिक दृष्टि से कबीर को किसी एक सम्प्रदाय से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता। उन्होंने रामानन्द से रामभक्ति का मन्त्र प्राप्त किया था, पर फिर भी उनके राम 'दृष्ट दनल रघुनाथ' नहीं थे। 'राम' से उनका अभिप्राय कुछ और ही था; उनके शब्दों में — "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।"

उन्होंने राम को निर्गुण रूप में ग्रहण करते हुए उपदेश दिया — निर्गुण राम निर्गुण राम जपहु रे भाई।" उनकी राम भावना ब्रह्म—भावना से सर्वथा मिलती है अर्थात् उनके राम बहुत कुछ निर्गुण ब्रह्म के पर्यायवाची हैं। ब्रह्म, जीव, जगत, माया, आदि तत्त्वों का निरूपण उन्होंने भारतीय अद्वैतवाद के अनुसार किया है। उनकी दृष्टि में विश्व में जो कुछ है, वह ब्रह्म ही है, ब्रह्म ही है, ब्रह्म से ही उत्पन्न है और व अन्त में ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है।

पाणी ही ते हिम भया, हिम हवै गया बिलाय।

जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाई।।

ब्रह्म और सृष्टि के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए भारती

अद्वैतवादी घट, जल, प्रतिबिम्ब, कनन-कुण्डल आदि उदाहरण देते हैं। कबीर ने प्रायः इन्हीं का उपयोग किया है।

इनमें आप आप सहबिन में, आप-आप सँ खेलै।  
नाना भाति धड़े सब भांडे, रूप धरे धरि मेले ॥

खंडित मूल निवास कहौ, किम बिगतह कीजै।  
ज्यूँ जल में प्रतिव्यंभ त्यूँ सकल रामहिं जाणिजै ॥

जैसे बहु कंचन के भूषन ये कहि गलि तंवावहिगे।  
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरे सुनिहि मांहि संमाहिगे ॥

संसार के मिथ्यात्व एवं मायाजन्म भ्रम का आख्यान भी कबीर ने अद्वैतवादी विचार-धारा के अनुसार ही किया है। माया की निन्दा उन्होंने बारम्बार की निन्दा है -

जग हटावड़ा स्वाद टग, माया वेसां लाई।  
रामचरन नीकों गही, जिन जाइ जनम ठगाइ ॥  
कबीर माया पॉपणी हरि सँ करै हराम।  
मुखि कड़ियाली कुमति की कहण न देई राम ॥

इस प्रकार कबीर की दार्शनिक मान्यताएँ अद्वैतवाद के अनुकूल हैं किन्तु शंकराचार्य की भांति वे उसे ज्ञान के द्वारा उपलब्ध करने की बात स्वीकार नहीं करते हैं। वे भक्ति या प्रेम के द्वारा ही उसकी प्राप्ति संभव मानते हैं। भले ही हमारे इतिहासकारों ने उसे ज्ञान-मार्गी, घोषित कर दिया हो, किन्तु वे तो स्पष्ट रूप से कहते हैं "पोथी-पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय ढाई अच्छर प्रेम के पढ़ै तो पण्डित होय।" यहाँ यह कहने कि आवश्यकता नहीं कि अद्वैत और प्रेम लक्षणा भक्ति का समन्वय उनसे पूर्व महाराष्ट्रीय संत ज्ञानेश्वर एवं नामदेव सम्यक् रूप में कर चुके थे। कबीर ने महाराष्ट्रीय एवं सम्प्रदाय या वारकरी सम्प्रदाय की दीक्षा लेने की कोई चर्चा नहीं मिलती पर इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी दार्शनिक मान्यताएँ एवं धार्मिक भावनाएँ इन पूर्ववर्ती संतों के सर्वथा अनुकूल हैं, उन्हें इस सम्प्रदाय के अनुयायियों का कोई सम्पर्क या सानिध्य प्राप्त हुआ हो।

व्यवहारिक क्षेत्र में कबीर पूर्णतः प्रगतिशील दिखाई पड़ते हैं। वे परम्परागत रूढ़ियों, अंध-विश्वासों, मिथ्या प्रदर्शनों एवं अनुपयोगी रीति-रिवाजों के कट्टर विरोधी थे। वे सभी धर्मों की मूलभूत एकता को स्वीकार करते हुए धर्म के नाम पर होने वाले पारस्परिक विरोध की तीव्र भर्त्सना करते हैं। इसी प्रकार वे मूर्ति पूजा, व्रत-उपवास, तीर्थाटन, रोजा, जीव-हिंसा आदि तत्त्वों के भी विरोधी थे। धर्म के सामान्य तत्त्वों-सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, संयम, सदाचार का उन्होंने पूरा समर्थन करते हुए एक व्यापक धर्म की प्रतिष्ठा की है, जिसे सभी मनुष्य समान रूप से अपना सकें। अस्तु, उनकी दृष्टि ने सत्य और असत्य को स्पष्ट रूप से पहचानते हुए सभी क्षेत्रों में 'सार-सार' को ग्रहण कर लिया और निस्सार का बहिष्कार कर दिया।

कवि के रूप में भी कबीर का महत्व कम नहीं है। यद्यपि वे मूलतः भक्त, विचारक एवं सुधारक थे, किन्तु उन्होंने जो कुछ अनुभव एवं चिंतन किया उसे कविता के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया तथा समाज सुधार का कार्य भी अपनी काव्यमय उक्तियों के माध्यम से किया अतः उनके विभिन्न रूपों का उनके कवित्व से गहरा सम्बन्ध है। कदाचित्त यह कहा जा सकता है कि कबीर का मूल लक्ष्य कविता करना नहीं था या काव्य उनका साध्य नहीं था, साधन था,

अतः कवि रूप में उनका स्थान गौण समझा जाना चाहिए, किन्तु वस्तुतः यह बात नहीं है। हमारे विचार से केवल यात्रा के लिए यात्रा करने वालों की अपेक्षा किसी गंतव्य को सामने रखकर यात्रा करने वाले अधिक गतिशील एवं सफल सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार जो बिना किसी उद्देश्य के काव्य-क्षेत्र में आ घुसते हैं वे सिवा इधर-उधर भटकने या खींच-तान करके दो-चार रचनाएँ प्रस्तुत करने के अलावा और कुछ नहीं कर सकते, जब कि गम्भीर भावना, सच्ची अनुभूति एवं किसी महान, लक्ष्य से प्रेरित होकर सहज रूप में कविता लिख बैठने वाले अधिक सफल कवि सिद्ध होते हैं, बशर्त कि उनके पास काव्य रचने की मूल शक्ति पहले से विद्यमान हो। विश्व साहित्य के इतिहास में जिन महान् कवियों का नाम लिखा जाता है, उनमें अधिकतर किसी महान् उद्देश्य से ही प्रेरित होने वाले हैं, निरुद्देश्य भटकने वाले नहीं। अस्तु किसी विशेष उद्देश्य से काव्य करना कवि कबीर के महत्व में अभिवृद्धि ही करता है, वह इस बात का प्रमाण है कि उनके पास कुछ कहने के लिए था, यों ही वे कवियों की श्रेणी में नहीं आ विराजे थे।

पर उपर्युक्त कथन का यह भी तात्पर्य नहीं है कि केवल तथ्य के बल पर ही कोई व्यक्ति कवि बन जाता है। आकर्षण शक्ति सिद्धांत के अनुसार कथ्य या द्रव्य का रूपांतरण कवि के द्वारा इस प्रकार होना चाहिए कि उसकी शक्ति जागृत एवं उद्दीप्त होकर पाठक को आकर्षित कर सके। कबीर में यह बात मिलती है। वे शुष्क तथ्य को भी अपनी कल्पना-शक्ति के बल पर अत्यन्त आकर्षक रूप प्रदान कर देते हैं; उदाहरण के लिए 'लोभ करना बुरा है; मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है, मृत्यु सबको आवेगी जैसे परंपरागत विचारों का कबीर द्वारा प्रस्तुत रूप क्रमशः दृष्टव्य है।

माखी गुड में गडि रही, पंख रही लटकाई।  
ताली पिटे सिरं धुनै, मीठे बोइ माई ॥

यह तन कौंचा कुम्भ है लिये फिरे था साथ।  
टपका लागा फूटिया, कछु नहीं आया हाथ ॥  
माली आवत देखि कै कलियाँ करै पुकार।  
फूले-फूले चुनि लिए, काल्हि हमारि बारि ॥

### कबीर साहित्य की प्रमाणिकता

मध्यकालीन धर्म साधना और काव्य साधना के क्षेत्र में अत्यन्त तेजस्वी एवं प्रति भावना कबीर दास अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सन्दर्भ में अनेक प्रकार की आंशकाओं 'सन्देहों तथा विवादों के घेरे में रहे है। कबीरपंथी लोगों का विश्वास है कि सद्गुरु की वाणी अनन्त है। चूँकि कबीरदास ने मसि कागद छुआ नहीं था, इसलिए इतना निश्चित है कि कबीर की वाणी को उनके शिष्यों ने अंकित किया और उसके प्रस्तुतीकरण में अपनी क्षेत्रीय भाषा के प्रभावों से अछूते नहीं रहे। कबीर के साथ लोक समाज का ऐसा गहरा लगाव हुआ कि वे भी अपनी रचनात्मक प्रतिभा की व्यवहारिक परिणति कबीर के नाम की छाप देकर ही करते रहे। कबीरपंथी रचनाओं ने इस कार्य में विशेष योगदान किया है। उन्होंने अपने पंथ की मान्यताओं को पुष्ट करने के लिए कबीर के नाम पर अनेक रचनाओं को प्रस्तुत करके कबीर वाणी की प्रमाणिकता को सन्दिग्ध बना दिया। पंथ के अनेक ग्रन्थों में सम्प्रदाय, वेष, छापा, तिलक आदि का महत्व वर्णित है।

कबीर जिनके विरुद्ध जीवन पर्यन्त संघर्षरत रहे उन्हीं के समर्थन में वे फिर कहने लगे होंगे ऐसा मानना असंगत है। कबीर के समय में ही उनकी वाणी के भेद बनने लगे थे। महाराजा विश्वनाथ सिंहजू ने उल्लेख किया है कि भागूदास बीजक चुराकर भाग गया था।

भागूदास की खबरि जनाई। लें चरणामृत पियाई।  
कोऊ आप कह वह कालिंजर गयऊ। बीजकग्रंथ चोराई  
ले गयऊ।।

श्रुत परम्परा से गृहीत पाठ में रूपान्तरण होना स्वाभाविक है। जो रचनाकार निरक्षर है। उसका हस्तलेख संभव ही नहीं है। कबीर साहित्य की जांच इसलिए एक कठिन समस्या है।

कबीर की वाणियों में 'बीजक' का मुद्रण सबसे पहले हुआ, इसका कारण है कि कबीर-पंथी 'बीजक' को सर्वाधिक प्रमाणित तथा आदरणीय ग्रंथ मानते हैं। रीवा नरेश श्री विश्वनाथ सिंह की टीका के साथ 'बीजक' 1872 ई0 से पहले मुद्रित हुआ था। अहमदशाह ने 'बीजक ऑफ कबीर' का अंग्रेजी अनुवाद किया है। हनुमान दास ने संयुक्त में बीजक की व्याख्या प्रस्तुत की है। कबीर की सम्पूर्ण ग्रंथावली का संपादन श्यामसुन्दर दास ने किया है। कबीर रचनावली का संपादन अयोध्या सिंह उपाध्याय ने किया है। इनके अलावा पदों तथा साधियों के अलग-अलग संकलन प्रकाशित हैं। साखियों पर राजस्थानी का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। पदों तथा रमैणियों पर यह प्रभाव कम है।

कबीर ने विभिन्न प्रान्तों के सन्तों की सत्संगति की थी मात्र इसीलिए उन्होंने पंचमेल खिचड़ी या सधुककड़ी भाषा का प्रयोग नहीं किया। ज्यादातर हिन्दी के आलोचक कबीर के विषय में अनर्गल निर्णय ही देते रहे हैं। कबीर जिस हिन्दी को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर रहे थे वह सही अर्थ में सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश का प्रतिनिधित्व कर रही थी। वे जानबूझकर ऐसी भाषा का निर्माण कर रहे थे जिसका स्वरूप यथासम्भव अखिल भारतीय हो, जैसा कि बहुत में हमने हिन्दी को राजभाषा का संवैधानिक अधिकार के सहयोग से हो ताकि वह सम्पूर्ण भारतीय जनमानस की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। कबीर ने बड़ी चतुराई से एक दोहा कहा है—

बोली हमारी पूरबी, ताहि न चीन्हें कोई।  
हमरी बोली सो लखै, जा पूरब का होइ।।

कबीर के कहने का तात्पर्य है कि मेरी बोली यद्यपि पूरब की है किन्तु मेरी काव्य भाषा में कोई आसानी से उसे नहीं परख पाता है। उसमें पूर्वीपन इतना कम है कोई यह नहीं कह सकता कि किसी पूरबिया ने इसकी रचना की है। मेरे पूरब के साथी ही जानते हैं कि मेरी बोली पूरबी है क्योंकि मैं उनसे उसी में बातचीत करता हूँ। कबीर ने अपने साधना के विषय में जैसे गर्वोक्ति की है उसी तरह अपनी अर्जित भाषा के सन्दर्भ में भी। कबीर में निश्चित रूप से विलक्षण प्रतिभा थी। उनका भाषा पर जबरदस्त अधिकार था। उन्होंने अपने कई पदों में फारसी निष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया है।

पीरों मुरीदों काजियाँ, मुल्लों अरु दरबेस  
कहा थे तुम्ह किनि कीपे, अकलि हे सबनेस।।  
कुरानों कतेबाँ उस पढ़ि—पढ़ि फिकरि या नहीं जाई।  
टुकदम करारी जे करै, हाजियाँ सुर खुदाई।।

कबीर ने भाषा-प्रयोग के समय देश काल तथा पात्र का ध्यान रखा है। मौलवियों, मुल्लाओं तथा मुस्लिम श्रोताओं से उन्होंने फारसीनिष्ठ भाषा में, राजस्थानी तथा पंजाबी क्षेत्र के श्रोताओं में राजस्थानी, पंजाबी मिश्रित भाषा में, ब्रज तथा खड़ी बोली क्षेत्र के लोगों से ब्रजी तथा खड़ी बोली में, पूर्वी लोगों से पूर्वी भाषा में संवाद स्थापित किया। कम से कम उनके भाषा प्रयोग में इस तरह का लचीलापन

अवश्य था इसलिए अलग-अलग क्षेत्रों में उनकी वाणी क्षेत्रीय भाषा से प्रभावित हुई। इस तथ्य को भी स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है कि उसकी वाणी मौखिक ढंग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचती रही है इसलिए उसमें रूपान्तरण हो जाना मुश्किल नहीं है। यदि कोई एक पद भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में किंचित पाठ भेद के साथ उपलब्ध है तो कोई कठिनाई नहीं होती। कठिनाई वहाँ उत्पन्न होती है जहाँ बिल्कुल विपरीत भाव वाले पद मिल जाते हैं।

### कबीर का युग और युगबोध

कबीर के समय की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का अवलोकन करने के बाद उनसे जुड़ी हुई समस्याएँ स्वतः उभर कर सामने आ जाती हैं। तत्कालीन राजनीति से कबीर अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रभावित होते हैं। तत्कालीन सामाजिक जीवन पर भी राजनीतिक उथल-पुथल का अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रभाव पड़ रहा था। राजा को ईश्वर का पर्याय मानने वाली जनता के सामने अब ऐसे राजागण आ गये थे जो उनके ईश्वर के लिए धातक थे और उनकी युग-युग से प्रतिबद्ध आस्थाओं के भी प्रभंजक थे। राजनीतिक और धार्मिक दोनों क्षेत्रों में हिंसा का दौर चल रहा था इसलिए कुछ धर्मों के द्वारा प्रचारित अहिंसा का आदर्श सामाजिक धरातल पर एक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित हो रहा था। कबीर हर प्रकार की हिंसा का विरोध करते हैं विशेषतया धर्म और स्वाद से सम्बन्धित हिंसा का। स्वाद के वशीभूत होकर मनुष्य प्रबल अत्याचार करता है और निर्दोष का खून करके ईश्वर के समक्ष न्याय की याचना करता है —

जोरी किया जुलम है, माँगें न्याय खुदाई।  
खालिक दरी खूनी खड़ा, मार मुहे सुहिं खाई।।

ब्राह्मणों द्वारा किये जाने वाले बलि-कर्म की ओर संकेत करते हुए कबीर कहते हैं —

जीव बाधत अरु धर्म कहत है, अधरम कहों है भाई।  
आपन तौ मुनिजन वहै बैटे, कासनि कहों कसाई।।

कबीर की वाणी में तत्कालीन मानवीय संवेदना बड़ी व्यापकता और समग्रता से ध्वनित है। उनका संकल्प राजा-महाराजाओं की लड़ाईयों का ब्यौरा तथा उनके मिथ्या गुणवाद को प्रस्तुत करना नहीं है किन्तु किसी भी सशक्त इतिहासकार से भी अधिक वे अपने समसामयिक सांस्कृतिक जीवन को अभिव्यंजित करते हैं। वे एक जागरूक रचनाकार की तरह अपने सम्पूर्ण अनुभवों को अपनी रचना में पुनर्संजित करते हैं। उनके रूप को और उपमानों में मध्ययुग साकार हो जाता है। मध्यकाल में दुर्ग का बड़ा महत्व था राजा इसी में रहता था लेकिन सशक्त फौजों के द्वारा घिर जाने पर रखवाले भाग जाते थे और स्वामी पकड़ लिया जाता था। महल में रानियाँ अपने स्वामी के लिए रोने लगती थी।

छूटी फौज आनि गढ़ धेरयो, उड़ि गयो गूडर छांडि तनी।  
फ़रयो हंस जम ले चाल्यो, मन्दिर रौवे नारि धनी।।

तत्कालीन समाज के विविध वर्गों के रहन-सहन, महत्व और खान-पान का भी संकेत कबीर साहित्य में मिलता है। कबीर के समय में तीन वर्ग थे। धनी सम्पन्न वर्ग, दूसरा मध्यवर्ग और तीसरा निम्न वर्ग। मीर, मलिक और छत्रपति राज प्रभुता सम्पन्न वर्ग था। इनकी शक्ति की कबीर इन पंक्तियों में व्यंजना करते हैं —

तंत न जानू मंत न जानू, जानू सुंदर काया।  
मीर मलिक छत्रपति राज, ते भी खाये माया।।

ते भी कहकर कबीर अपनी सामर्थ्य को उद्धटित करते हैं। यही वह वर्ग है जिसके पास पाट-पटंबर निवार की सेज जीर्ण है। समाज की अजीब व्यवस्था है। कुचरित्र व्यक्ति जीवन में आनन्द उठा रहे हैं। वे जो सदा दुआएँ करते हैं पर धुरी बजाते रहते हैं। भगवान में आस्था रखने वाले दरिद्र और भिखारी हैं। कबीर ने गरीब किसानों की दुर्दशा को बहुत समीप से देखा था। किसान खेतों की सिंचाई कुएँ से करते थे। उनका परिश्रम अन्त तक फलीभूत हो सके इसके लिए खेती की रखवाली भी आवश्यक होती थी। खेत में विज्ञान लगा दिया जाता था जिससे जानवर भयभीत हो जाते थे। अधोलिखित पद में इसी व्यवस्था का रूपक बनाया गया है –

जतन बिन मृगनि खेत उजारे  
टारे टरत नहीं निस बासुरि बिडरत नहीं बिडारे।।

निम्न वर्ग के आवास, घरेलू स्थिति, पात्र आदि के मार्मिक चित्र कई पदों में अंकित मिलते हैं। उनके घर की दीवारें कच्ची होती थी। घर के अन्दर मिट्टी के पात्र होते थे। दुर्दिन में गरीबों को भीग-भीग कर समय गुजारना पड़ता था। कबीर द्वारा प्रयुक्त लौकिक बिम्बों में उपर्युक्त तथ्यों का विस्तृत परिचय मिलाता है।

संतो भाई आई ग्यांन आँधी रे।  
भ्रम की टाटी सबे उडांणी, माया रहै न बाँधी रे।।  
छुचिते की दोइ थुनी गिरांनी, मोह बलींडा टूटा।  
त्रिस्नां धानि परि धर ऊपरि, कुबधि को भांडा फूटा।।

### इसी तरह का एक दूसरा रूपक है

इब न रहँ माटी के घर मैं  
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, धन गजरत कपै मेरी छाती।।

इतिहासकारों ने कबीर के समय में मुद्रा के प्रसार की कमी का उल्लेख किया है। कबीर की वाणी से यह संकेत मिलता है कि जिनके पास धन था वे संचय को अधिक महत्व देते थे। समाज में भूखमरी भी व्याप्त थी। भूख से मुक्ति दिलाने वाली कोई कारगर व्यवस्था न थी। लोगों को भगवान का ही भरोसा रह गया था।

कबीर भूखा कया करै, कहा सुनावै लोग।  
भांडा धड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग।।

कबीर साहित्य में उपलब्ध राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सन्दर्भों से यही निष्कर्ष निकलता है कि एक सशक्त रचनाकार के रूप में कबीर ने अपने युग के यथार्थ को अच्छी तरह से पहचाना था। विरक्त सन्त होते हुए भी वे साधारण जनो के दुःख-दर्द के सहभोक्ता थे, राजनीति से कोसों दूर रहकर भी राजनीतिक षडयंत्र की यातना से व्यवस्थित थे। अपनी जन-आस्था के कारण कबीर अपने युग को किसी राज्याधीन इतिहासकार की अपेक्षा अधिक ईमानदारी से और प्रामाणिक ढंग से समझ सके और प्रस्तुत कर सके।

### कबीर : अर्जित परम्परा

समकालीनता तथा परम्परा पूर्णतया एक दूसरे से विच्छिन्न नहीं किए जा सकते हैं इसलिए अपने समकालीन यथार्थ की सम्यक्, पहचान रखने वाला रचनाकार अपनी पूर्ण परम्पराओं को एकदम से नकार कर नहीं चलता; बल्कि उन्हें समकालीन समस्याओं के परिप्रेक्ष में नया अर्थ देता है।

अब यह देखना है कि कबीर के साहित्य में परम्परा का कौन सा रूप प्रतिष्ठित होता है और कौन सा रूप बहिष्कृत। प्रतिष्ठित होने वाली परम्परा को कबीर कैसे अर्जित करते हैं। कबीर का मूल संकल्प था मानवता को हर प्रकार के बंधनों से मुक्त करके अखंड आनन्द की प्राप्ति कराना। वे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैयक्तिक साधना के स्तर पर प्रयत्न करते हैं और उस प्रयत्न में भी लोगों को सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित करते हैं। वे अपनी साधना में सम्पूर्ण मानव समुदाय को सहयोगी बनाना चाहते हैं किन्तु कबीर के समय तक लोग अपने को पहले हिन्दु, मुसलमान, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वैष्णव, शाक्त, शैव, बौद्ध, जैन समझते थे बाद में कुछ और। इसलिए वे कबीर के साथी कैसे बन सकते थे। कबीर के समक्ष भी कठोर चुनौती थी। उन्हें ऐसी साधना भूमि पर लाने की, जहाँ खंडित परम्परा नहीं अखंडित, पूर्ण भारतीय परम्परा की सम्बद्धता हो और जिसमें अविरोधी तत्त्वों का संगठन हो, जहाँ भारतीय चिंतन की लघुतम धाराओं को जोड़ महाधारा का प्रवाह हो। नवागत विदेशी धर्म इस्लाम के अनुयायियों को भी इसी व्यापक मानक धर्म से जोड़ने की इच्छा थी कबीर की। इस इच्छा की पूर्ति कठिन अवश्य थी क्योंकि शासक के धर्म की ओर जो भय या प्रलोभन से धर्मान्तरण का प्रवाह था उसे उल्टी दिशा में मोड़ना साधारण काम नहीं था। यदि उनके मुड़ने की स्थिति निर्मित भी होती तो चिन्तन की किस परम्परा से उनको जोड़ा जाता। क्या उन्हें ब्राह्मण धर्म में स्थान मिल सकता था, क्या उन्हें बौद्ध या जैन या कोई अन्य धर्मावलम्बी बनाया जा सकता था। किसी एक धर्म से जुड़ने से तो समस्या का सामधान न होता। पहले तो हिन्दु धर्म को ही एक भारतीय धर्म के रूप में प्रतिपादित करने की आवश्यकता थी। जिससे एक संगठित शक्ति का निर्माण हो सके और भारतीय अस्मिता की रक्षा की जा सके। इस विमर्श से यह निष्कर्ष निकलता है कि कबीर अपने से पूर्व की परम्पराओं को जोड़कर एक अखंडित परम्परा का निर्माण करना चाहते थे। यही उनके युग की प्रबल माँग थी।

### कबीर की भक्ति

मध्ययुग में धर्म-प्रवण सामान्य जनो को सिद्धों और नाथों के चमत्कार और विराग पूर्ण साधना से मुक्त करते जाति-पाति, ऊँच-नीच के द्वेषपूर्ण भावना से रहित निर्गुण भक्ति की रसधारा में निमग्न करने वाले सर्वप्रथम साधक हैं कबीर। द्रविड़ से उपजने वाली भक्ति के संवाहक रामानन्द के प्रखर शिष्य कबीर की ही प्रतिभा का फल था कि आडम्बरों के झाड़-झंखाड़ से साफ करती हुई भक्ति धारा सप्त और नव खण्ड में व्याप्त हो गई। एक उक्ति है –

भक्ति द्राविण रूपजी लाए रामानन्द।  
परगट किया कबीर न सप्त दीप नव खण्ड।।

लोकवादी संत कबीर भक्ति की शास्त्रीय मान्यताओं से अपरिचित नहीं थे। उन्होंने अपनी भक्ति को नारदी भक्ति कहा है –

## भगति नारदी मगन सरीरा, इहि त्रिधि जव तरि कहै कबीरा ।।

कबीरदास की भक्ति पर नारदी भक्ति स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। नारद के अनुसार भक्ति ईश्वर के प्रति अनुराग की अभिव्यक्ति है – सात्वस्मिन् परम प्रेम रूपा। कबीर की भक्ति का भी मूलाधार यही प्रेम है। इस प्रेम का प्रारूप सार्वभौमिक है। इसमें उन सभी प्रेम मार्गियों की भावनाओं का समावेश है जो प्रेम को ईश्वर प्राप्ति का एक मात्र साधन मानकर चलते हैं। उनमें विटठल सम्प्रदाय की प्रेम भावना तो है ही सूफियों के इश्क की खुमारी भी है। भक्ति रस प्रेम का भी अद्भूत रसायन है। कबीर का कथन है –

कबीर हरि रस पीया जाणिये, जे कबहु न जाई खुमार।  
मैमता धूत रहै, नाहीं तन की सार।।

नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ माना गया है। कबीर ने भी भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कई स्थानों पर किया है –

जब लव भाव भगति नहीं कहरहौं।  
तब लग भवसागर क्यों तरिहौं।।

साधना की किसी एक युक्ति से केवल एक ही फल मिलता है उसमें चाहे योग को पा लिया जाए या भोग को। राम नाम का सिद्ध योग (भक्तियोग) ऐसा है जिसमें दोनों का फल प्राप्त हो जाता है।

एक जुगति एकै मिले। किंवाजोग की भोग।  
इन दुन्युं फल पाइए। राम नाम सिद्धि जोग रे।।

## कबीर की वर्तमान प्रासंगिकता

आज का युग विज्ञान की चरम उपलब्धि का युग है। मानव बुद्धिबल से प्रकृति की शक्ति को स्वायत्त करने में सक्षम हो गया है उसमें अज्ञात तथ्यों का पता लगाकर सृष्टि से अपनी सर्वोत्कृष्टता को प्रमाणित कर दिया है। वह किसी भी शक्ति के आगे अपने को निरीह, दीन-हीन, अक्षम मानने को तैयार नहीं है। विश्व की दूरी सिमट गई है। सुख-सुविधा के अनेक साधन अविष्कृत हो चुके हैं। विश्व-मानव एक दूसरे के काफी समीप आ चुका है। पुरानी मान्यताओं तथा मूल्यों की प्रतिष्ठा पूरी तौर से नहीं हो पा रही है। नयी भौतिक सुख-समृद्धि की होड़ में मनुष्य-मनुष्य का दुश्मन होता जा रहा है। धर्म-कर्म के प्रति वास्तविक आस्था का अभाव तथा बुद्धि के बल पर स्वार्थी तत्वों द्वारा धर्म के दुरुपयोग की कोशिशें बराबर हो रही हैं। चूंकि मनुष्य अपनी नीति का नियंता स्वयं बन गया है इसलिए जब उसे मनोवांछित सुख-सुविधा नहीं मिल पाती तो उसके मन में कुंठा, निराशा आदि अभावमूलक वृत्तियां घर कर जाती हैं। आर्थिक दबाव के कारण भी परेशानियां और अपराध बढ़े हैं।

समाज में ऊँच-नीच की भावना अब भी बरकरार है। छुआ-छूत में कमी अवश्य आई है किन्तु जातिवाद का शिकंजा समाज को अभी भी जकड़े हुए है। जातिवाद स्वार्थवाद से जुड़कर और भी विषाक्त तथा घातक हो गया है।

कबीर अपने जीवनकाल में जिन समस्याओं से जूझ रहे थे, वहीं समस्याएँ रूप बदलकर आज भी मौजूद हैं। इसलिए कबीर साहित्य की प्रासंगिकता यथावत बनी है। कबीर का विशुद्ध भावमूलक तथा मानवसमतावादी धर्म आज भी सार्थक है। कबीर ने छः सौ वर्ष पहले जो संघर्ष छेड़ा था, यदि उसे उसी रूप में आगे बढ़ाया गया

होता तो भारतीय समाज का नक्शा ही कुछ और होता। ऐसे ही निर्भीक एवं जुझारू व्यक्तित्व की आवश्यकता आधुनिक समाज को भी है। जो खुलकर सच को सच और झूठ को झूठ कह सके, जो सभी प्रचलित धर्मों के आडम्बरपूर्ण परस्पर विरुद्ध तत्वों को निर्ममतापूर्वक काटकर विशुद्ध मानव हितकारी एक भारतीय धर्म की स्थापना की पहल कर सके और भारतीय धर्म, दर्शन और ज्ञान की परम्परा की अवहेलना करने वाले पांखड़ियों को खरी-खोटी सुना सके। कबीर ने मध्यकाल में कहा था –

कॉकर पाथर जोरि के, मस्जिद लिया बनाय।  
ता पर मुल्ला बाँग दे, बहरो हुआ खुदाय।।

कबीर ने कथनी-करनी के भेद को मिटाने, सच्चे मार्ग पर चलने, गुरुजनों के प्रतिश्रद्धा रखने, सामान्य प्राणियों के लिए दयाभाव रखने का जो उपदेश दिया है, उसकी उपादेयता आज के संदर्भ में और अधिक बढ़ गई है। धर्म के नाम पर हिंसा का जो दौर चल रहा है उसमें कबीर की विशुद्ध अहिंसावादी दृष्टि नया आलोक बिखेरती है। धर्म के नाम पर पशुओं की हत्या करने वाले लोगों पर कबीर कितना नाराज थे, धर्म के नाम पर आदमी की हत्या करने वालों के लिए भी कबीर की वाणी में व्यंग्य की चोट कम नहीं है। मनुष्य की अनेक कुंठाओं, निराशाओं और बेगानेपन का कारण अहं है। वह अपने को ही सर्वशक्तिमान समझकर जीवन और जगत की अनेक समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रयत्नशील है। इसलिए छोटी-से-छोटी असफलता उसको निराश और व्यग्र कर देती है। कबीर ने गर्व और अहं को मनुष्य का शत्रु माना है –

कबीरा कहा गरबियों, काल गहै कर केस।  
नां जाणै कहां मरिसी, कै घर के परदेस।।

## स्वार्थ और खुदगर्जी के खिलाफ कबीर की उद्घोषणा है

आप सवारथ मेदनी, भगत सवारथदास।  
कबीर राम सवारथी, जिति छांड़ि तनकी आस।।

धन संचय, माया, मोह, लोभ, त्रिष्णा आदि का कबीर बराबर विरोध करते हैं। धन को लेकर कोई परलोक नहीं जाता।

कबीर सो धन संचिये, जो आगैं कूँ होई।  
सीस चढ़ाए पोटली, ले जात न देख्या कोई।।

कबीर धन संग्रह के विरुद्ध हैं। वे उतना ही चाहते हैं जितना परिवार के पोषण के लिए आवश्यक हो

साई इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।  
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।।

विरक्त सन्त होते हुए भी कबीर ने जीवन के यथार्थ को अच्छी तरह पहचाना और मानवीय समता तथा आत्म-सम्मान को प्रतिष्ठित किया। आज की विद्रोही पीढ़ी को अपने अधिक समीप समझती हैं परिणामतः कबीर की पहचान बढ़ती जा रही है, किन्तु जब तक वर्ग, वर्ण, धर्म, सम्प्रदाय, जाति और नस्ल की दीवारों को ढहाती हुई इंसानियत और इंसानी संस्कृति की वह छवि नहीं उभरती जिसे कबीर ने देखा था और अपने युग को निर्मम होते हुए भी दिखाना चाहा था। तब तक तमाम प्रकार के झूठे दावों को मिटाता गिराता

सच्ची मानवता का वह सोता अपना समूचे वेग से नहीं फूटता, जिसके लिए कबीर आजीवन फावड़ा और कुदाल लिए श्रमरत रहे, तब तक कबीर इसी प्रकार उपेक्षित रहेंगे, इसी प्रकार त्याज्य बने रहेंगे, इसी प्रकार वे – पहचान होंगे। डा० शिवकुमार मिश्र के इस कथन में इतना और जोड़ना चाहूँगा कि जब तक कबीर को नहीं पहचाना जायेगा तब तक धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा, दंगे, वैमनस्य, शत्रुता भी नहीं समाप्त होगी।

कबीर की वाणी अब भी वजनदार, धारदार तथा प्रांसगिक है। उनकी विद्रोही चेतना अब भी जन-साधारण में आत्म-विश्वास पैदा करने की सामर्थ्य रखती है।

### संदर्भ

1. प्रतियोगिता साहित्य सीरिज – डा० अशोक तिवारी – पेज न० 592
2. उपरिवत् – 593
3. कबीर ग्रन्थावली – रामकिशोर शर्मा – पेज न० 1, 2, 3
4. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खण्ड) गणपति चन्द्र गुप्त – पेज न० 155, 156, 157, 158, 159
5. कबीर ग्रन्थावली – रामकिशोर शर्मा – पेज न० 6, 7, 9
6. उपरिवत् – 15, 16, 17
7. उपरिवत् – 21, 25, 26, 34, 35
8. उपरिवत् – 103, 104, 105